तृतीय अध्याय

हिन्दी के प्रतीक नाटकों के संक्षिप्त विकास की रुपरेखा

अ) भारतेंदु पूर्व परम्परा के प्रतीक नाटक,

ब) भारतेंदु युगीन प्रतीक नाटक,

क) प्रसाद युगीन प्रतीक नाटक,

ड) छठे दशक के प्रतीक नाटक ।

तृतीय अध्याय

भारतेंदु पूर्व परम्परा के प्रतीक नाटक --

हिंदी में प्रतीक शैली के नाटकों की परंपरा पुरानी है। यह परंपरा पहले से ही संस्कृत नाट्य-साहित्य में मिलती है। आगे चलकर हिंदी में इसका अनुकरण हुआ। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में कुछ संस्कृत के प्रतीक नाटकों का हिंदी में अनुवाद किया गया। इनमें कृष्ण मिश्र का 'प्रबोध चंद्रोदय' प्रमुख स्थान रखता है। इसके अनेक अनुवाद उपलब्ध होते हैं।[१] 'प्रबोध चंद्रोदय' के बारह उपलब्ध तथा आठ अनुपलब्ध अनुवादों का पता चलता है। 'प्रबोध चंद्रोदय' का प्रथम अनुवाद महाराज यशवंत सिंह ने संवत् १७०० के लगभग किया।[२] परंतु डॉ. सरोज अग्रवाल ने एक उपलब्ध प्रति के आधार पर मल्हकवि कृत अनुवाद को इस विषय की सर्वप्रथम रचना स्वीकार किया है।[३] इसका उद्देश्य दार्शनिक एवं धार्मिक सिध्दांतों का प्रतिपादन है। राज्यमोह के कारण पुरुष अपने वास्तविक स्वरुप के ज्ञान से वंचित हो जाता है। विवेक द्वारा मोह की पराजय होने पर ही पुरुष को चिरंतन शाश्वत ज्ञान की उपलब्धि होती है। नाटक में मनुष्य की भाव - वृत्तियाँ, मोह, विवेक, माया, मति, श्रध्दा, प्रवृत्ति, निवृत्ति, काम, क्रोध,

---

१ डॉ. देवेंद्रकुमार - संस्कृत नाटकों के हिंदी अनुवाद - पृ.क्र.९७।

२ ब्रजरत्न दास - हिंदी नाट्य साहित्य - पृ.क्र.५५।

३ सोमनाथ गुप्त - हिंदीनाटक साहित्य का इतिहास - पृ.क्र.४।

अहंकार, रति आदि को नाटकीय पात्रों के रुप में चित्रित किया गया है। शास्त्रीय दृष्ट्या इस नाटक में नांदी, सूत्रधार, नटी, मंगलाचरण, स्वगत, भरतवाक्य आदि सभी नाटय-नियमों का पालन हुआ है।

हिन्दी में केशव का 'विज्ञान गीता', देव कृत 'देवमाया प्रपंच' 'प्रबोध चंद्रोदय' शैली के प्रतीक नाटक ही है। 'इन प्रतीकात्मक नाटकों द्वारा हिंदी के नाटकों में एक काव्यात्मक शैली का विकास मिलता है।'[१] रंगमंच की दृष्टि से ये नाटक अभिनय शून्य हैं, क्योंकि इनमें कोरे संभाषण और दार्शनिक व्याख्यान अधिक मात्रा में है। इनमें कार्यव्यापार का नितांत अभाव है। इन प्रतीक नाटकों में अमूर्त भावों के मानवीकरण की प्रवृत्ति विशेष रुप से लक्षित होती है। इसीलिए कई आलोचकों ने इस शैली के नाटकों को भावात्मक नाटक की संज्ञा भी दी है।'[२]

भारतेंदु युगीन प्रतीक नाटक --

भारतेंदु युग से ही गद्य नाटकों का प्रारंभ हुआ। इस युग के नाटय-साहित्य में राष्ट्रीयता एवं समाज सुधार के संदर्भ में प्रतीकों का प्रयोग अधिकतर हुआ है। भारतेंदु ने 'भारत दुर्दशा' (सन १८७६) में, परतंत्र देश की तत्कालीन दुर्दशामयी परिस्थितियों को सांकेतिक भाषा और प्रतीक पात्रों के माध्यम से चित्रित किया है। इस नाटक में भारत, भारत-भाग्य, भारत दुर्दैव, सत्यानाश, निर्लज्जता, मदिरा, आलस्य, रोग, अंधकार आदि प्रतीक पात्र आये हैं। इनका नाम के अनुसार ही चित्रण किया गया है। 'इस युग में प्रतीक पात्रों का प्रयोग बहुत हुआ। 'अंधेर नगरी' में 'गोबरधन' मूर्खता का प्रतीक चित्रित हुआ है। 'भारत सौभाग्य' में लिबरल पार्टी, ब्रिटिश नेशन, आर्मी कैप्टन, फूट, बैर, कलह, बकबक, झाकझाक, विद्या, बुध्दि आदि सैकड़ों पात्र भर दिये हैं। कोई तत्वयुक्त बात बोल रहा है, कोई तत्वरहित। लाला धनश्यामदास का 'वृध्दावस्था नाटक' में स्वार्थमल,

---

१ डॉ. बलवन्त लक्ष्मण कोतमिरे - हिन्दी गद्य के विविध साहित्य - रूपों का इतिहास - पृ.क्र.१२२।

२ ब्रजरत्नदास - हिन्दी नाट्य - साहित्य - पृ.क्र.५५।

अजानवती, अभागवती, कुरुपचंद, न्यायचंद आदि प्रतीक पात्र भरे है। सभी नाम के अनुरुप गुणों को धारण करते हैं। ' प्रबुध्द यामुन ' में भक्ति, दम्भ प्रतीक पात्र हैं। ' देश दशा ' नाटक में बलोरी, चटोरी, हरसोना, किसान आदि प्रतीक पात्रों की योजना है।[१] प्रतापनारायण मिश्र, भारतेंदु की परंपरा को लेकर ही आगे चले हैं। उनके ' भारत दुर्दशा ' नाटक, राधा कृष्ण दास कृत ' दु:खिनी बाला ' बदरीनारायण चौधरी ' प्रेमधन ' कृत ' भारत सौभाग्य ' (सन १८८९) राधा कृष्ण गोस्वामी रचित ' यमलोक यात्रा ' (सन १८८९) दरियाव सिंह कृत ' मृत्यु सभा ' (सन १८९६) किशोरीलाल गोस्वामी कृत ' नाटय संभव ' (सन १८९६) मधुसूदन गोस्वामी कृत ' गायत्री परिणय ', कृष्णचंद्र जेबा के ' भारत दर्पण ', ' जख्मी हिंद ', ' शहीद संन्यासी ' तथा जमनादास कृत ' हिंद ' आदि में सामान्य रुप से प्रतीकों का प्रयोग दिखाई देता है।

इसी परंपरा में लिखा गया ज्ञानदत्त सिध्द का ' मायावी ' एक प्रतीक नाटक है, जिसमें नैतिक (फैशन, मदिरा), आध्यात्मिक (सरलसिंह, मायावी, अन्तस राम, ज्ञानानंद, मनसाराम, आध्यात्मिक) एवं मनोवैज्ञानिक (बुध्दि) तीन प्रकार के प्रतीक पात्रों की रचना हुई है, जो नाम के अनुरुप ही कार्य करते दिखाई देते हैं। ' भारत दुर्दशा ' के अनुकरण पर लिखी गई और भी कुछ महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं, जैसे कि ' स्वर्ण देश का उध्दार ', ' अनोखा बलिदान ', ' भारत राज ' आदि। निष्कर्षत: राष्ट्रीय, धार्मिक एवं सामाजिक विषयों को प्रतीकात्मक रुप में प्रस्तुत कर बहुत से नाटक, भारतेंदु युग में और बाद में द्विवेदी युग में लिखे गये। इनमें राष्ट्रीय प्रतीक - नाटकों की प्रधानता है। इन नाटकों में कुछ विशुध्द रुप के प्रतीक नाटक हैं और कुछ आंशिक रुप के प्रतीक नाटक हैं।

---

१ गिरिजासिंह - हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि - पृ.क्र.२९७।

प्रसाद युगीन प्रतीक नाटक --

पाँचवें दशक तक के प्रतीक नाटक --

प्रतीक नाटकों की परंपरा में जयशंकर प्रसाद का ' कामना ' (सन १९२७) नाटक महत्वपूर्ण स्थान रखता है । ' अदृश्य संघर्ष को दृश्यमान करने के लिए दृश्य-काव्यों की रचना ही प्रतीकवादी नाटकों की कला है । कामना में हमें यही मिलता है । '[1] कामना में मानव जीवन के अंतर्गत चलने वाले सत् एवं असत् वृत्तियों के शाश्वत संघर्ष को मूर्त करने का प्रयत्न किया गया है । आलोचकों की दृष्टि में इस कोटि की प्रतीकात्मकता, नाटकों के लिए अधिक समीचीन है । '[2] फूलों के द्वीप में सुख - शान्ति का साम्राज्य है, जिसके निवासी पारस्परिक राग द्वेष और संघर्ष की भावना से मुक्त हैं । अकस्मात एक विदेशी युवक विलास अपने दो साथियों - कंचन और कादम्ब के साथ उस द्वीप में आ पहुँचता है । द्वीप की रानी ' कामना ' संतोष को त्यागकर अत्यधिक सोना होने के कारण विलास की ओर आकर्षित होती है । अत: उसका परिणाम बहुत बुरा होता है । स्वर्ण और मदिरा की लालसा से संपूर्ण द्वीप की सुख-शान्ति और सामाजिक व्यवस्था अस्तव्यस्त हो जाती है । अंत में स्वर्ण और मदिरा के लालच में प्रजा में फैले अपराध एवं अनाचार से क्षुब्ध ' कामना ' अपनी भूल स्वीकारते हुए संतोष और विवेक की सहायता से द्वीप में पुन: सुख-शान्ति स्थापित करती है । इस नाटक के पात्र मानवीय भावनाओं से संबंधित , मनुष्य की अंत: प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं । नाम के अनुरूप गुणों से युक्त कामना, विलास, संतोष, दम्भ, लालसा, विवेक, महत्वाकांक्षा और करुणा मनोवैज्ञानिक तथा दुर्वृत्त एवं क्रूर नैतिक पात्र हैं । इन भावों को व्यक्तित्व प्रदान किया गया है ।

यद्यपि क्रूर, दुर्वृत्त, प्रमदा और दम्भ कोरे प्रतीकात्मक पात्र हैं, फिर भी वे नागरिक सभ्यता पर जो व्यंग्य करते हैं, वे अत्यंत मार्मिक बन पड़े हैं । दम्भ संस्कृति और सभ्यता के संबंध में शोर मचाने वाले महापुरुषों का प्रतीक है, तो

---

१ डॉ. श्रीकृष्ण लाल - आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास - पृ.क्र.२५३ ।

२ डॉ. रामचंद्र तिवारी - हिन्दी का गद्य साहित्य - पृ.क्र.१८० ।

दुर्वृत्त व्यवस्थापकों का । प्रमदा आज की सभ्यता में पत्नी नारी का नाम है ।`[१] अध्यात्म और धर्मप्रधान पूर्व या भारत का प्रतीक है । फूलों के द्वीप में, पश्चिम की सभ्यता के प्रतीक स्वर्ण और मदिरा के प्रसार द्वारा तत्कालीन समाज में व्याप्त असंतोष, छल, प्रपंच, उच्छृंखलता का चित्रण करते हुए प्रसाद ने अंत में पूर्व के उदात्त आदर्शों की विजय दिखाई है । अत: `प्रतीक योजना की दृष्टि से इसमें आदि से अंत तक सफलता का निर्वाह हुआ है ।`[२]

चंद्रभानुसिंह ने `चंद्रिका` (सन १९३३) में प्रकृति के उपादानों - चंद्रिका, भानु, निशा, प्रभात आदि को प्रतीक पात्रों के रूप में प्रस्तुत किया है । चंद्रिका और भानुप्रकाश की प्रेमकथा के माध्यम से नाटक में प्रेम और कर्तव्य का सुंदर समन्वय दिखाई देता है ।

कामना के बाद सुमित्रानंदन पंत ने `ज्योत्स्ना` नामक प्रतीकात्मक नाटक लिखा । इसमें प्रकृति के सभी उपकरणों पर मानवीय भावनाओं का आरोपण करके आधुनिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है । इस विश्व को प्रकाशयुक्त आदर्श देने के लिए इन्दु अपनी रानी ज्योत्स्ना पर पृथ्वी का शासन भार सौंपते हैं, ताकि भूलोक में शांति का साम्राज्य स्थापित हो सके । ज्योत्स्ना के आदेश से स्वप्न और कल्पना सुप्त मानव जाति के मनोलोक में प्रवेश कर उनकी तामस वृत्तियों का शमन करके सद्वृत्तियों को जागृत करते हैं । परिणाम स्वरूप भूलोक पर प्रेम, दया, समता आदि उदात्त गुणों के नये युग का प्रादुर्भाव होता है और ज्योत्स्ना अपना कार्य समाप्त कर स्वर्गलोक लौट जाती है । `ज्योत्स्ना` में नवीन समाज तथा जीवन के निर्माण का चित्रण है । ज्योत्स्ना पृथ्वी पर आनंद का साम्राज्य स्थापित करके स्वर्ग को लौट जाती है ।

भगवती प्रसाद वाजपेयी का `छलना` (सन १९३९) नाटक तो कामना और ज्योत्स्ना से भिन्न है । इसमें मानव मन के मनोविकारों का मनोवैज्ञानिक

---

१ डॉ. बच्चनसिंह - हिन्दी नाटक - पृ.क्र.१६१ ।

२ श्रीपति शर्मा - हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव - पृ.क्र.३८० ।

विश्लेषण किया गया है। इसके साथ साथ नारी समस्या को भी चित्रित किया है। यह एक समस्या मूलक प्रतीक नाटक है। नाटक के पात्र किसी न किसी वर्गविशेष के प्रतिनिधि हैं। उनके माध्यम से आज का सामाजिक संघर्ष मूर्तिमान हो उठा है। बलराज नाटक का आदर्शवादी पात्र है, जो पुरुष के गंभीर ,स्वाभिमान, दृढ , आत्मसंयत एवं पौरुष का प्रतीक है। विलासचंद्र पुरुष के दूसरे पक्ष को प्रस्तुत करनेवाला, बाह्य आकर्षण का प्रतीक है। नारी चरित्रों में कल्पना एक आधुनिक नारी का प्रतीक है। वह आधुनिक नारी की तरह चंचल, असंतुष्ट और विलास की ओर उन्मुख है। पहले वह चारित्रिक महानता के कारण बलराज में पूर्ण श्रध्दा रखती है, परंतु बाद में बलराज के संयमी स्वभाव से तंग आकर विलास की ओर आकर्षित होती है। विलास के बाह्य आकर्षण में पुरुषत्व की कमी के कारण कल्पना वहाँ भी खुश नहीं हो पाती। वस्तुत: " विलास और बलराज नदी के दो कूल हैं, जीवन के दो छोर हैं, जिनके बीच में कामना भटकती फिरती है। यही उसके जीवन की छलनामय ट्रेजेडी है।आज की नारी कल्पना की भाँति भोग और उन्मुक्त प्रेम में विश्वास करती है, परंतु उसे यह प्राप्त कैसे हो, यह उसे मालूम नहीं है। अत: वह मार्ग - भ्रष्ट-सी इधर-उधर ठोकरें खा रही है।"[१] कल्पना विलास को भुला नहीं पाती और विलास की मृत्यु की सूचना मिलते ही उसे आघात लगता है और वह मूर्च्छित हो जाती है। वस्तुत: विलास और बलराज दो जीवन दृष्टियाँ हैं, जिनमें नारी की कामना भटकती रही है। यही उसकी छलना है।

प्रसाद-कालीन नाटकों में प्राय: ऐतिहासिक और पौराणिक विषयों को लेकर, समसामयिक समस्याओं का चित्रण दिखाई देता है। फिर भी इस युग में कुछ महत्वपूर्ण प्रतीक नाटक उपलब्ध होते हैं। इस युग के प्रतीक नाटकों में अधिकतर, मानवीय भावनाओं और प्राकृतिक उपादानों को मानवीकरण रूप से प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है।

---

१ श्रीपति शर्मा - हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव - पृ.क्र.३८५।

प्रसादोत्तर काल के प्रतीक नाटक --

सेठ गोविंद दास ने पुरानी परंपरा के प्रतीक वादी नाटकों का अनुसरण किया और `प्रबोध चंद्रोदय` की शैली पर कल्पना से निर्मित `नवरस` की रचना करके `प्रकाश` (सन् १९३५) की रचना की। इसमें सांकेतिक प्रतीक शैली का प्रयोग किया है। सेठ गोविंद दास ने गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित होकर भारतीय रस सिध्दान्त के नौ रसों का मानवीकरण किया और आधुनिक युध्द की समस्या और समाधान को प्रस्तुत किया है। नाटक का नायक वीरसिंह वीर रस का तथा नायिका प्रेमलता शृंगार रस की प्रतीक है। इसी प्रकार रुद्रसेन (रौद्र रस), भीम (भयानक रस),करुणा (करुण रस), शान्ता (शान्त रस), लीला (हास्य रस), अद्भुत चंद्र (अद्भुत रस) तथा ग्लानि दत्त (बीभत्स रस) का प्रतीक है। इस नामकरण के अलावा प्रतीक पात्रों की वेशभूषा, रंग-रूप, क्रिया - कलाप तथा पारस्परिक संबंध निर्वाह भी रस-सिध्दान्त संबंधी नियमों के अनुकूल ही हुआ है।

कुमार हृदय ने `भारत दुर्दशा` की परंपरा में `नक्शे का रंग` (सन् १९४१) नामक प्रतीक नाटक रचा। इसमें दीनमेष दासताग्रस्त भारत वर्ष का प्रतीक है। करुणा उसकी पत्नी तथा शान्ति उन दोनों की संतान है, जो गांधी जी के अहिंसावादी सिध्दान्त की प्रतीक है। कलाकुमार विश्व संस्कृति का केंद्ररूप तथा मदोन्मत्त बर्बर अराजकेतु फासिस्ट विचारधारा का प्रतीक है। नाटक में भारतीय अध्यात्मवाद तथा पाश्चात्य भौतिकवादी सभ्यता की मीमांसा करते हुए भारतीय आदर्शों की स्थापना की गई है।

तुलना की भाँति, `धरती और आकाश`, शंभुनाथ सिंह का नाटक, एक समस्या प्रतीक नाटक है। इसमें वर्तमान पूँजीवाद और बुध्दिवाद का संघर्ष दिखाया है, तथा इनके समन्वय पर बल दिया है। `कामायनी की भाँति इसमें कविता, विज्ञान तथा ज्ञान के एकीकरण का सुझाव दिया गया है।[१]` नाटक

१ श्रीपति शर्मा - हिन्दी नाटकों में पाश्चात्य प्रभाव - पृ.क्र.३८८।

के कुछ पात्र (विज्ञान, प्रकाश, ज्ञानचंद, कविता, कला) मानव मनोवृत्तियों के मूर्त प्रतीक हैं तथा कुछ (लक्ष्मीपति, भूपति सिंह) वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं।

पृथ्वीराज कपूर और रमेश सहगल रचित `दीवार` (सन् १९४५) भारत विभाजन को प्रतीक रुप में प्रस्तुत करता है। सुरेश और रमेश के पारस्परिक झगडे में एक मकान के बीच बनाई गयी दीवार इसी विभाजन का प्रतीक है। लक्ष्मीकान्त गुप्त ने `भारत दुर्दशा` की परंपरा में `भारत राज` (सन १९४८) नाटक बनाया। यह भी एक प्रतीक नाटक है। भारत राज और धर्मराज हिंदू राज्य का प्रतीक हैं, कर्मराज मुस्लिम राज्य का तथा मित्रराज ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रतीक है।

इस प्रकार प्रसादोत्तर युग के प्रतीक नाटकों में जहाँ एक ओर पुरानी परंपरा के प्रतीक नाटकों का अनुसरण हुआ है वहाँ समस्या मूलक रचनाओं में सांकेतिक प्रतीक शैली का प्रयोग किया गया।

छठे दशक के प्रतीक नाटक --

छठे दशक को नये नाटकों का युग भी कह सकते हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल में प्रतीक विधान की दृष्टि से नवीनतम साहित्य निर्माण हुआ। इस युग के प्रतीक नाटकों में विषय एवं शिल्प में विविधता दिखाई देती है। प्रमुख रुप से वर्तमान प्रतीकात्मक नाटक, आधुनिक जटिल प्रश्नों का समाधान, अतीतोन्मुखी दृष्टि द्वारा करना चाहते हैं, किंतु पौराणिक घटनाओं, पात्रों और प्रसंगों से प्रतीक ग्रहण करने पर भी यह प्रतीक विधान मूलत: आधुनिक दृष्टिकोण रखता है, क्योंकि उसके मूल में वर्तमान समस्याओं से पलायन करने की प्रवृत्ति कदापि लक्षित नहीं होती है। इस युग के नाटकों में युगीन समस्याओं को चित्रित करने का प्रयास लक्षित होता है। कथावस्तु का क्रमिक विकास न होकर समाज की समस्याओं, वर्ग विशेष की मनोवृत्तियों, व्यक्ति की संवेदनाओं, उलझनों आदि को, अपने अनुभव के आधार पर सांकेतिक रुप से चित्रित करने का प्रयास इन प्रतीक नाटकों में मुख्य रुप से हुआ है। नाटकों में जो पात्रों का चरित्रांकन उपलब्ध है, वह नाटककार की विशिष्ट भावनाओं,

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

विचारधाराओं एवं मान्यताओं को प्रतीक रुप में अंकित करता है। इन नाटकों में पात्रों की मनोवृत्तियों को अपने वर्ग मान्य के आधार पर चित्रित किया गया है। इन नाटकों के पात्रों की समस्याएँ, जनसमूह की समस्याएँ हैं। यह प्रतीकात्मक चित्रण उन समस्याओं का प्रतिनिधित्व करने में पूर्णतया समर्थ है। अत: सांकेतिकता, प्रतिनिधित्व करने की क्षमता और प्रतिरुपता इन प्रतीक नाटकों की प्रमुख विशेषताएँ हैं।[१]

स्वातंत्र्योत्तर नाट्य-साहित्य में और एक विशेष प्रवृत्ति भी दिखाई देती है, कि इतिहास के माध्यम से वर्तमान की सांकेतिक अभिव्यक्ति करना। कुछ नाटककारों ने इतिहास और पुराण से प्रतीक चुनकर अपने उद्देश्य की अभिव्यक्ति की है। जगदीशचंद्र माथुर के `कोणार्क` (सन १९५२) को इस श्रेणी की पहली प्रभावशाली नाट्यकृति माना जा सकता है। यह नाटक ऐतिहासिक संदर्भ में कलाकार की चेतना को प्रतीक रुप में उपस्थित करता है। इसमें प्राचीन चरित्रों के माध्यम से प्रगतिवादी वैचारिक मन्थन को अभिव्यक्ति मिली है। कई आलोचक इस कृति को समकालीन प्रगतिवाद की प्रतिध्वनि मानते हैं।

प्रतीक नाटकों की शृंखला में धर्मवीर भारती का काव्य-नाटक `अन्धा युग` उल्लेखनीय है। इसमें युध्दोपरान्त उग आई ह्रासोन्मुख संस्कृति का चित्र है।

`युध्दोपरान्त
यह अन्धा युग अवतरित हुआ
जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्माएँ सब विकृत हैं।[२]

इसमें महाभारत के अठारहवें दिन की संध्या से कृष्ण की मृत्यु तक की कथा वर्णित है। `अन्धा युग` महाभारत कालीन कथा एवं पात्रों के संदर्भ में आधुनिक समाज में व्याप्त मूल्य हीनता, अमानवीयता, विकृति, कुण्ठा, घृणा, विघटन, विषाद और निराशा को व्यक्त करता है। अश्वत्थामा, युयुत्सु, संजय, धृतराष्ट्र,

---

१ डॉ. रमेश गौतम - हिन्दी के प्रतीक नाटक - पृ.क्र.५९।

२ धर्मवीर भारती - अन्धा युग पृ.क्र.१०।

गांधारी, कृष्ण आदि सभी पात्रों में आधुनिक मानव का मानसिक द्वन्द्व विद्यमान है। ज्वालाप्रसाद खेतान कहते हैं -- ' अन्धा युग के अधिकांश पात्र निश्चित ऐतिहासिक चरित्र होते हुए भी विशिष्ट मानसिक प्रवृत्तियों, दृष्टिकोणों एवं अंतर्ग्रंथियों के प्रतीक हैं। यह प्रतीकत्व उनके चरित्र की स्वतंत्रता को नष्ट नहीं करता वरन् उन्हें एक विराट मानवीय प्रासंगिकता प्रदान करता है, जिनके कारण महाभारत की कथा के एक अंश का पुन: कथन मात्र न रहकर ' अन्धा युग ' मानव-मन के अंतर्जगत् का महाकाव्य बन गया है।[१] आगे के नाट्य-लेखन के लिए 'अन्धा युग' एक आदर्श उपस्थित करता है। डॉ.लक्ष्मणदत्त गौतम ने ' अन्धा युग ' की पौराणिक कथा में आधुनिकता देखी है। वे लिखते हैं -- ' इस कृति की ' अंधी संस्कृति ' आज और अतीत दोनों के इन्सान को जकड़े हुए हैं और गिध्दों से आक्रान्त महाभारतीय युध्द, वर्तमान महायुध्दों के मरघटी या श्मशानी परिणाम को उजागर करती है।'[२] इसीलिए ' अन्धा युग ' की संवेदना मात्र पौराणिक न होकर भाव-चेतना के तीन स्तरों का स्पर्श करती हैं - पौराणिक, युगीन तथा मानवीय स्तर। श्री. सुरेश गौतम के अनुसार युध्द के अनुभव का एक स्तर निश्चित रुप से पौराणिक है, दूसरा स्तर प्रथम एवं द्वितीय महायुध्द के द्वारा लाई गई मानवीय स्थिति से संबंधित है और तीसरा स्तर मनुष्य के मानस में ही विद्यमान परात्व की कामना से है।[३]

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल हिंदी में प्रतीक नाट्य-साहित्य के प्रमुख कलाकार हैं। उन्होंने ' अंधा कुआँ ' (सन १९५५) नामक समस्या-नाटक प्रतीक शैली में लिखा है। ' अंधा कुआँ ' भारतीय वैवाहिक पध्दति का प्रतीक है, जिसमें विवाह रुपी कुएँ में धकेल दिये जाने पर संस्कारों के कारण, पति द्वारा अमानवीय अत्याचार होने पर भी नारी के पास, निकलने का कोई रास्ता नहीं। नाटक की नायिका ' सूका ' इसी विचार को व्यक्त करती है, कि " ' अन्धा कुआँ ' यही है, जिसके

---

१ ज्वालाप्रसाद खेतान - सृजन के आयाम - पृ.क्र.१५३।

२ डॉ.लक्ष्मणदत्त गौतम - धर्मवीर भारती - पृ.क्र.९।

३ सुरेश गौतम - विस्तार के लिए द्रष्टव्य : अन्धायुग एक सृजनात्मक उपलब्धि - पृ.क्र.३८।

संग में ब्याही गयी हूँ, जिसमें एक बार गिरी, और ऐसी गिरी, कि फिर न उभरी। न मुझे कोई निकाल पाया, न मैं खुद निकल सकी और न कभी निकल ही पाऊँगी। बस धीरे-धीरे इसी में चुककर मर जाऊँगी।"[1] इस नाटक में भारतीय नारी की दयनीय दशा के साथ वैवाहिक पध्दति पर व्यंग्य किया गया है। यहाँ से यथार्थवादी प्रतीक शैली के नाटकों का आरंभ माना जाता है। भगवतीचरण वर्मा ने 'रुपया तुम्हें खा गया' (सन १९५५) नामक नाटक लिखा। यह भी सांकेतिक शैली का समस्या मूलक प्रतीक नाटक है।

मोहन राकेश के प्रतीक नाटक 'आषाढ का एक दिन' में कलाकार की सृजनात्मक प्रतिभा की समस्या स्पष्ट दिखाई देती है। इस नाटक का नायक कालिदास ऐतिहासिक संदर्भ में आधुनिक मानव का अंतर्द्वन्द्व प्रस्तुत करता है। मोहन राकेश के अनुसार 'आधुनिक प्रतीक के निर्वाह की दृष्टि से ही उसमें थोडा परिवर्तन अवश्य किया गया है। यह इसलिए, कि कालिदास मेरे लिए एक व्यक्ति नहीं, हमारी सृजनात्मक शक्तियों का प्रतीक है। नाटक में वह प्रतीक उस अंतर्द्वन्द्व को संकेतित करने के लिए है, जो किसी भी काल में सृजनशील प्रतिभा को आन्दोलित करता है।'[2]

'आषाढ का एक दिन' के विभिन्न नाटकीय चरित्र ऐतिहासिक चौखट में काल्पनिक होते हुए भी समकालीन अनुभवों को प्रकट करने वाले हैं। मल्लिका वर्तमान नारी का रूप है, जो अपनी विवशता में भी अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की घोषणा करती है। वह नारी के परंपरागत शोषण को स्वीकार न करती हुई अपने व्यक्तित्व के प्रति जागरुक है। उसका जीवन उसकी अपनी संपत्ति है।'[3] मल्लिका के व्यक्तिवादी विचारों में आधुनिक नारी चेतना की पर्याप्त झलक है। अम्बिका युगों-युगों से शोषित एवं पीडित भारतीय नारी का चित्र उपस्थित करती है। उसका जीवन पीडा का इतिहास है।'[4] उसके माध्यम से नाटककार ने

---

१ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल- अंधा कुआँ - पृ.क्र.१२।

२ मोहन राकेश - लहरों के राजहंस - भूमिका।

३ मोहन राकेश - आषाढ का एक दिन - पृ.क्र. १२।

४ मोहन राकेश - आषाढ का एक दिन - पृ.क्र.३८।

आज की भौतिकवादी और व्यावहारिक दृष्टि को प्रस्तुत किया है। क्लिोम भी इसी दृष्टि का परिचायक है। जीवन के सुखों को अधिक महत्व देनेवाला मातुल आज के अवसरवादी लोगों का प्रतीक है। राज्यसत्ता और समृध्दि के प्रति प्रकट की गई उसकी वितृष्णा व्यंग्यात्मक होते हुए भी आधुनिक राजनीतिक चाटुकारिता को उजागर करती है। राजपुरुष दंतुल सत्ता वर्ग का प्रतिनिधि चरित्र है। अनुस्वार और अनुनासिक आधुनिक विसंगतियों का बोध कराते हैं। रंगिणी-संगिनी के प्रसंग में मोहन राकेश ने आज की विश्वविद्यालयीन शोध-पध्दति पर व्यंग्य किया है। इस प्रकार इस नाटक में राकेश ने एक नये रुप में इतिहास का निर्माण किया है।'[१]

इस दशक का सबसे प्रमुख नाटक रहा, 'मादा कैक्टस' (सन १९५९), जो लक्ष्मीनारायण लाल ने लिखा है। डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल ने कहा है, 'टेढ़ी बात को कहने के लिए प्रतीक को अपनाना पड़ा और फिर प्रतीक तो, नाटक की सहज भाषा है। .... इस तरह 'मादा कैक्टस' का प्रतीक, प्रतीक योजना के फैशन के लिए नहीं है।'[२] नाटक में संगीत से लेकर कार्यों तक, घटनाओं से पात्रों तक, नीलाम के बाजे से अनाथालय के बच्चों के गीत तक, मादा कैक्टस से मुर्गाबी चिड़िया तक प्रतीक ही प्रतीक हैं। नाटक का कथानक आधुनिक समाज से संबंधित है। अरविन्द के अनुसार कैक्टस उन नये इन्सानों का प्रतीक है, जो विरोधी से विरोधी परिस्थितियों में भी हरा-भरा रहता है।[३] अरविन्द का ऐसा विश्वास है, कि जिस प्रकार मादा कैक्टस के संपर्क में आने से नर कैक्टस सूख- जाता है, उसी प्रकार नारी के सामीप्य के कारण कलाकार की कला निष्प्राण हो जाती है। यही इस नाटक में कहा है।

---

१ डॉ.रमेश गौतम - हिंदी के प्रतीक नाटक - पृ.क्र.१७८।

२ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - मादा कैक्टस - भूमिका।

३ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - मादा कैक्टस - पृ.क्र.३६।

निष्कर्षत: कह सकते हैं, कि इस दशक में अन्य नाटकों की तुलना में प्रतीक नाटकों का अधिक निर्माण नहीं हुआ। अन्य नाटकों की तुलना में प्रतीक नाटकों की संख्या अल्प है। इन नाटकों के प्रमुख निर्माता हैं -- मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायण लाल, धर्मवीर भारती, जगदीशचंद्र माथुर, ज्ञानदेव अग्निहोत्री,। छठे दशक में ही प्रतीक नाटकों की परंपरा शुरु हुई, जो आगे चलकर सातवें दशक में चरम सीमा पर पहुँच गयी।

••